बाल साहित्यकार चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक के योगादान का उत्कृष्ट

दिविक रमेश

बाल साहित्य ही नहीं बल्कि पूरे हिंदी साहित्य के लिए गर्व की बात है कि वर्ष 2025, बच्चों सहित सभी पाठकों के अनिवार्य और अपनी अगली पीढ़ी के रचनाकारों के लिए प्रेरक, अपने उपनाम के अनुकूल साहित्य के आकाश में चंद्रमा की तरह प्रकाशवान हमारे बड़े लेखक स्वर्गीय चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' जी का जन्म शताब्दी वर्ष है। वे जीवन के आखिरी समय तक अर्थात 26 जून, 2000 तक, सृजनरत रहे। मैं सबसे पहले उनकी स्मृति को सादर नमन करता हूँ।

निरंकारदेव सेवक की कृति बालगीत साहित्य (इतिहास एवं समीक्षा), प्र.सं. 1983 के अनुसार, "मयंक जी का जन्म 1925 में कानपुर में हुआ था। वहीं उन्होंने एल.एल.बी तक शिक्षा की और वकील हो गये। अब वहीं नोटरी पब्लिक भी है। 9-10 वर्ष की आयु में उंन्होंने बच्चों के लिए कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था। ...उन्होंने छोटे और बड़े दोनो आयु वर्ग के बच्चों के लिए कवितायें लिखी हैं। सन 1981 में बाल साहित्य समीक्षा ने उन पर एक विशेषांक निकाला था।" सजग पाठक जानते ही होंगे कि 'मयंक' जी की रचनाएँ अपने समय की प्राय: सभी पत्रिकाओं में स्थान पाती थीं। मुझे संतोष है कि भले ही 1987 में प्रकाशित एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'हिंदी के श्रेष्ठ बाल-गीत' में 'मयंक' जी की कविताओं को स्थान न दिया गया हो लेकिन 2002 में प्रकाशित पुस्तक 'भारतीय बाल साहित्य का इतिहास' (संपादक: जयप्रकाश भारती) में अपने लेख 'संस्कार उकेरता हिंदी का बाल-साहित्य में जयप्रकाश भारती जी ने बालसाहित्य में योगदान के महत्त्व की दृष्टि से 'मयंक' जी का नाम सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, बालस्वरूप राही, शेरजंग गर्ग, श्रीप्रसाद आदि साहित्यकारों के साथ रेखांकित किया है।

'मयंक' जी का बालसाहित्य में विपुल योगदान है। वह विधाओं की दृष्टि से भी वैविध्यपूर्ण है। कविता के क्षेत्र में ही उनकी कविताएँ, शिशुगीत, पद्यकथाएँ, पद्य नाटिकाएँ आदि के रूप में उपलब्ध हैं। गद्य विधाओं में भी उनका काफी योगदान मिलता है। मुलत: कवि प्रतीत होते हुए भी उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखी हैं, जीवनी लिखी हैं, यात्रा-वृत्त, नाटक, एकांकी आदि लिखे हैं। उनका एक बाल उपन्यास 'लौमड़ी मौसी और नटखट बंदर' तो प्रकाशन विभाग से ही प्रकाशित है। उनकी 50 से ऊपर पुस्तकें हैं। अब तो रचनावली भी संभव हो गई है जो चार खंडों में है और नमन प्रकाशन से 2025 में प्रकाशित हुई है। 'बालसाहित्य भारती' जैसे अनेक सम्मानों से वे सम्मानित हैं।

इससे पहले कि मैं विशेष रूप से बाल कविता के क्षेत्र में उनके योगदान के उत्कृष्ट पर अपनी बात रखूँ, बहुत संक्षेप में उनकी कहानी से अलग गद्य विधा की रचनाओं पर अपनी बात करना चाहूँगा। खासकर उनकी एक कृति ''चलो करें हम सैर' पर जो 1984 में आर्य प्रकाशन मंडल, गांधी नगर, दिल्ली से प्रकाशित हुई थी। यह कृति बुनियादीतौर

पर, बच्चों को, भारतीय भूगोल में व्याप्त भारतीय सांस्कृतिक वैभव की जानकारी देने के लिए है। ऐसी पुस्तकें बहुत बार रचनात्मक होने के स्थान पर उपयोगी भर बन कर रह जाने का खतरा उठाया करती हैं, जैसा, बहुत बार वैज्ञानिक कथाओं में भी देखने को मिल जाया करता है। मुझे खुशी है कि एक सक्षम लेखक होने के कारण मयंक जी ने इस कृति की अपनी रचनाओं में जानकारी को लादा या ठूँसा नहीं है बल्कि उन्हें अपने पाठकों के साथ रचनात्मकता के साथ साझा किया है। यहाँ जानकारी झर झर झरती हुई बही है, ठस नहीं रह गयी है। वह तत्थात्मक वर्णन मात्र नहीं है बल्कि अनुभव की राह जी हुई है। अपनी बात को पुष्ट कर्ने के लिए मैं उनके एक यात्रावृत्त 'चलो सैर करें –'त्रिवेंद्रम के श्री पद्मनाभ मंदिर की' का उदाहरण सामने रखना चाहूँगा। शीर्षक से स्पष्ट है कि यह यात्रावृत्त केरल की भूमि के एक खास स्थल की जानकारी देने के लिए है। बिना विस्तार में जाए मैं इसीका अंश आपके समक्ष उद्धृत करता हूँ जो खुद ब खुद, रचनात्मकता किसे कहते हैं का स्वरूप स्पष्ट कर देगा-

"इस मंदिर में प्रवेश करने के पूर्व कुर्ता, कमीज व अन्य ऊपर के वस्त्र उतार देने पड़ते हैं और कमर के नीचे के वस्त्रों में भी धोती या लुंगी पहनना अनिवार्य होता है। महिलाओं के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। मैं उस समय पतलून पहने हुए था। मेरे सामने मंदिर में प्रवेश करने की विषम समस्या उपस्थित हो गई। दस रुपये में एक नई लुंगी खरीदने से मेरा काम चल सकता था, पर मैं जरा-सी देर के लिए दस रुपया व (व्यय) कर देने के मूड में नहीं था। ऐसे अवसर पर मेरे साथ की एक महिला ने अपनी नई खरीदी हुई धोती देकर देव-दर्शन में मुझे सहायता दी। आज भी उन देवी की सहृदयता का स्मरण करके मैं कृतज्ञता से भर उठता हूं।

श्री पद्मनाभ स्वामी मंदिर के दर्शन करके चित्त आनन्द परिपूर्ण हो उठा। मंदिर से बाहर आने पर लम्बे-चौड़े विशाल तालाब के दर्शन करके मन में पुनः प्रसन्नता की तरंग दौड़ गई। तालाब के सामने ही एक बहुत ऊँचे भवन में एक बड़ी घड़ी लगी हुई थी, जो बिजली के बल्बों से प्रकाशित हो रही थी। हमको बताया गया कि वह जादुई घड़ी है। घड़ी के दोनों ओर दो हिरन खड़े हुए थे, जिनकी मनोहर आकृति बरबस ही दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। उस समय रात्रि के आठ बजने वाले थे। नीचे दर्शकों का समूह खड़ा हुआ ऊपर गर्दन उठाये घड़ी के पास खड़े हिरनों के जोड़े की ओर उत्सुकतापूर्वक देख रहा था। हम भी वहीं खड़े होकर ऊपर घड़ी और हिरनों की ओर देखने लगे। धीरे-धीरे समय बीतता जा रहा था। ज्यों ही घड़ी में रात्रि के आठ बजे कि ऊपर खड़े हिरनों में जैसे जान सी आ गई। वे एक-दूसरे की तरफ झपटे। उनके सिर एक दूसरे के सिर से टकराये और घंटा बजने की आवाज हुई 'टन'! फिर दोनों हिरन वापस अपने-अपने स्थानों पर लौट गये। एक क्षण बाद ही वे फिर एक-दूसरे की ओर झपटे। पुनः उनके सिर टकराये और आवाज हुई 'टन'! ऐसा आठ बार हुआ। इसके बाद दोनों ही हिरन अपने-अपने स्थान पर आकर चुपचाप खड़े हो गये।
घड़ी का जादुई करिश्मा देखकर हम सबके मन प्रफुल्लित हो उठे और हमको हैदराबाद दक्षिण के सालारजंग म्यूजियम की जादुई घड़ी की याद आ गई। इसमें सन्देह नहीं कि त्रिवेन्द्रम शहर का भगवान् पद्मनाभ स्वामी का मंदिर अत्यन्त दर्शनीय है और कला की अनुपम कृति है।"

एक और यात्रावृत्त है -चलो सैर करें- 'आओ तुम्हें समुद्र दिखाएँ'। इसी से एक अंश देखिए। समुद्र दर्शन का यह अद्भुत चित्र किसी भी पाठक को अभिभूत कर सकता है-

“कितना अच्छा लग रहा है। अरब सागर की लहरें समुद्र में उठ-उठकर बहती हुई किनारे की ओर आती थीं। जहाँ तक लहरें आती थीं, वहाँ तक की धरती गीली हो जाती थी। लहरें आकर धरती को गीली करके फिर लौट जाती थीं। हम लोग वहाँ से कुछ अलग हटकर खड़े थे। जहाँ पर हम खड़े थे, वहाँ तक लहरें नहीं पहुँच पा रही थीं। हम खड़े हुए अरब सागर के उस नैसर्गिक सौन्दर्य का दर्शन करके अपनी सौंदर्य-पिपासा शांत करने में तल्लीन थे कि इतने में एक बड़ी लहर आई, जो हमारे चरणों, जूते-मोजे और पतलून को भिगोती हुई वापस लौट गई। उस क्षण ऐसा प्रतीत हुआ, मानो समुद्र की लहर आकर हमारे चरण धो गई है। सचमुच बड़े भाग्यशाली थे हम लोग, क्योंकि उसके बाद फिर लहर वहाँ तक दुबारा नहीं आई और जहाँ तक लहरें पहले आ रही थीं, वहीं तक फिर आने लगीं। समुद्र द्वारा स्वागत की यह घटना तो स्मृति के भंडार में वर्षों तक सुरक्षित रहेगी।“

आशा है जो मैं कहना चाहता हूँ, वह प्रेषित हो गया है, और साथ ही योगदान की अभिव्यक्ति की कलात्मक सामर्थ्य के रूप में ‘मयंक’ जी के बालसाहित्य में उनके योगदान का उत्कृष्ट पक्ष भी।

कहानी कहन के क्षेत्र में भी उनके योगदान के उत्कृष्ट पक्षों में एक ऐसा पक्ष है जिसकी ओर अवश्य ध्यान जाना चाहिए। समीर गांगुली की एक टिप्पणी में डॉ. राजकिशोर सिंह का यह मत दिया गया है, जिसका स्रोत आत्माराम एंड संस, दिल्ली से, ऋषा यादव और राजकिशोर सिंह के संपांदन में, 2004 में प्रकाशित पुस्तक ‘यहाँ सुमन बिखेर दो’ है –‘ मयंक जी की संपूर्ण बाल कहानियों को विषय के आधार पर तीन भागों में बांटा जा सकता है-1.मनोरंजन कहानियां, 2. मनोवैज्ञानिक कहानियां तथा 3. आधुनिकता बोध की बाल कहानियां। मनोरंजक बाल कहानियों की लंबी श्रृंखला को पुन: तीन भागों में बांटा जा सकता है - (क) पशु-पक्षियों पर आधारित कहानियां, (ख) लोककथा शैली की बाल कहानियां, (ग) अन्य मनोरंजक कहानियां।

यहाँ मैं बिना विस्तार में जाए उनके उपन्यास ‘लोमड़ी मौसी और नटखट बंदर’ (1990) के अंतिम कड़ी की एक कहानी ‘नैनीताल की सैर’ की बात करूँगा। एक तरह से कहानी की यह कड़ी यात्रावृत्त की सी है। इसमें हिंदी में लिखी गई कितनी ही कहानियों की तरह जानवरों की भूमिका प्रमुख है। साथ ही उनका मानवीकरण भी किया गया है - कम से कम भाषा के स्तर पर। यहाँ कहानी के योगदान का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उत्कृष्ट पक्ष वह है जो कितने ही समर्थ कहे जाने वाले बाल साहित्यकारों से भी चूक जाया करता है। प्रेमचंद के जानवर पात्रों के बारे में कहा जाता है कि वे प्राय: अपने ज्ञात स्वभाव और चरित्र के साथ चित्रित हुए हैं। मयंक जी की इस उपन्यास-कड़ी को यदि गौर के साथ पढ़ा जाए तो पता चलेगा कि इसके जानवर पात्र, लोमड़ी मौसी और नटखट बंदर, मनुष्यों के बीच, मनुष्यों से मनुष्य होकर बात नहीं करते बल्कि अपने वास्तविक रूप में ही रहते हैं। वे आपस में ही बातें करते हैं। मनुष्य के बारे में भी। स्थान के बारे में भी। और उनके संवाद बहुत ही स्वाभाविक बने हैं। दूसरे वे अपने ज्ञात चरित्र की मर्यादा में ही रहते हैं। मसलन नटखट बंदर की हरकतें वही हैं जो होनी चाहिए। एक और विशेष बात यह है कि कहानी में भरपूर कल्पना है लेकिन कहीं भी अविश्वसनीयता नहीं है। लगता है, ऐसा ही हुआ होगा। इसलिए दो मित्र जानवर पात्रों की प्रमुख भूमिका वाली कहानी होकर भी यह आज की बाल कहानी है। ध्यान दीजिए - ये पात्र कूदकर ट्रेन में चढ़ जाते हैं लेकिन मनुष्यों की तरह सीट पर नहीं बैठते बल्कि सीट के नीचे छिप कर बैठते हैं। जरा कुछ अंश देखिए-

“दोनों मित्र स्टेशन आ गए। जैसे ही वे स्टेशन पर पहुँचे, ‘लखनऊ-काठगोदाम एक्सप्रेस’ ने सीटी दी। झट से नटखट और मौसी ने दौड़ लगाई और वे आखिरी डिब्बे में चढ़ गए। सौभाग्य से आखिरी डिब्बे में कोई खास भीड़ न थी। नटखट और मौसी एक सीट के नीचे चुपके से घुस गए। उनका डिब्बे में घुसना कोई जान नहीं पाया।“

“लखनऊ पहुँचते-पहुँचते अँधेरा हो गया था। नटखट मौसी को लेकर विधान सभा भवन की तरफ निकल गया। विधान सभा का आलीशान और शानदार भवन देखकर लोमड़ी मौसी बहुत खुश हुई। फिर नटखट ने उनको ‘हजरतगंज’ की सैर करवाई। शाम के समय हजरतगंज की शोभा का क्या कहना था? दुकानें बिजली के प्रकाश में जगमगा रही थीं। चहल-पहल, शोर-शराबा और धूम-धड़ाके का बोल-बाला था। नटखट ने मौसी को हजरतगंज घुमाया और एक दुकान से कुछ खाने का सामान उड़ाकर खुद खाया और मौसी को भी खिलाया।“

“बाहर आकर नटखट ने चारों ओर दृष्टि डाली। दूर प्लेटफार्म पर कुछ लोग बैठे खा-पी रहे थे। बाकी यात्री स्टेशन से बाहर चले गए थे। मुसाफिरों को खाते-पीते देखकर नटखट को भी भूख लग आई। उसने मौसी से कहा, ”मौसी, पहले कुछ पेट-पूजा कर ली जाए, फिर आगे का प्रोग्राम बनाएँ।“

मौसी ने नटखट की बात की पुष्टि की। नटखट धीरे-धीरे मुसाफिरों की तरफ चला। वे लोग निश्चिंत बैठे खा-पी रहे थे। नटखट ने अचानक ही झपट्टा मारा और पूड़ी-साग लेकर हवा हो गया। फिर मौसी और नटखट ने एकान्त में बैठकर भोजन किया।“

यहाँ समझने की बात यह है कि भोजन की व्यवस्था बंदर को जैसे करनी चाहिए, वैसे ही करता है। आरोपित मनुष्य की तरह नहीं। मयंक जी के स्थान पर कोई और कमजोर साहित्यकार होता तो बंदर की बात किसी रेस्टोरंट के मालिक से करा देता, बर्तन आदि मांजने के श्रम के बदले में उन्हें भोजन दिलवा देता। इत्यादि। खैर।

एक संवाद का भी आनंद लीजिए-

“नटखट फिर बोला, ”लखनऊ से नैनीताल के लिए लखनऊ-काठगोदाम एक्सप्रेस ट्रेन जाती है। यह ट्रेन काठगोदाम पहुँचा देती है। काठगोदाम आखिरी रेलवे स्टेशन है। जहाँ से नैनीताल 20-22 मील रह जाता है। वहाँ से मोटर पर बैठकर नैनीताल जाते हैं।“

” अरे, तू तो बड़ा चालाक (समझदार) हो गया है रे नटखट। तुझको कितनी बातें मालूम हैं। “मौसी प्रशंसा से बोलीं।

” सब तुम्हारी दया है मौसी। शहर आते-जाते रहने से मेरी जानकारी कुछ बढ़ गई है इसमें संदेह नहीं। “नटखट नम्रता से बोला। और फिर दोनों में नैनीताल जाने की बात पक्की हो गई। “

एक और मजेदार संवाद:

“नटखट मुस्कराकर मौसी से बोला, ”देखो मौसी यह आदमी की औलाद कितनी आरामतलब होती

है। कल नैना पीक क्या गए कि आज बिस्तर पर लेटने की नौबत आ गई।“

” अरे आदमी भला हम लोगों की क्या बराबरी करेंगे। हम जंगल के बच्चे हैं। आराम करे हमारी बला। “मौसी इतराकर बोली। “एक विशेष बात यह भी है कि कहानी में इन पात्रों को इस प्रकार से समझदार दिखाया गया है कि बिना किसी उपदेश के पाठक, जानकारी या ज्ञान ग्रहण करने की समझ, सहज ही अर्जित कर सकता है। साथ ही, लोमड़ी मौसी और नटखट बंदर के माध्यम से, आपसी संबंधों के संवेदनशील जुड़ाव के रूप में भी यह एक बेजोड़ कथा-भाग है।

अब मैं मयंक जी की बाल कविताओं के उत्कृष्ट की ओर आता हूँ।

‘मयंक’ जी की उत्कृष्ट बाल कविताओं की एक सबसे बड़ी खूबी यह है कि ये दृष्टि सम्पन्न हैं। ये कविताएँ बच्चे में शेष से जुड़ाव की राह दिखाती हैं। दूसरे शब्दों में कहूँ तो सकारात्मक सोच से सजी हैं। यहाँ मैं विशेष रूप से मयंक जी एक बाल कविता ‘मेरी इच्छा’ की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा जो 1987 में प्रकाशित उनकी पुस्तक ‘पढ़-लिखकर तुम महान बनो’ से है-

अपनी इच्छा के बारे में—

यदि मैं जगमग सूरज होता,
तो जग में प्रतिदिन दिन लाता।
पर अपनी जलती किरणों से
मैं जग में आग न बरसाता।

यदि मै चमचम चंदा होता,
तो काली रातें चमकाता,
पर दुखिया के व्याकुल मन को
मैं और न ज्यादा कलपाता।

यदि मैं वन का पंछी होता,
तो फल खाता, गाना गाता,
पर दीन कृषक की फसलों को
नुकसान नहीं मैं पहुँचाता।

मेरे जीवन में प्रभु मुझको,
बस इतना हरदम ध्यान रहे!
मैं सबको सुख ही पहुँचाऊँ,
जब तक इस तन में प्राण रहे।

यहाँ न अकड़बाजी दिखाने (हमारी तरफ के लहजे में अकड़ मारने का) भाव है और न धौंस जमाने का पाठ है, जैसा दुर्भाग्य से हिंदी के बालसाहित्य में मिल भी जाता है और पढ़ा भी दिया जाता है और न ही

दुत्कारने या नीचा दिखाने का भाव। 'मयंक' जी की श्रेष्ठ कविताओं में, मनोविज्ञान के अनुकूल संवेदंशील जुड़ाव पर जोर रहता है, दूसरे के प्रति मदद आदि का प्यारा भाव और वह भी हर किसी के आत्म सम्मान की रक्षा करते हुए मिलता है।
कविता 'काले जामुन' की ये पंक्तियाँ भी सबूत हैं-

क्या कहते हैं- पास न पैसे!
तभी खड़े हो चुप-चुप ऐसे।
अजी फिकर क्या, हाथ बढ़ाओ
ले लो दोना-जामुन खाओ।

पापा से जब पैसे पाना,
आकर तब मुझको दे जाना।
वाह-वाह, मतवाले जामुन!
मेरे काले-काले जामुन!!

कुछ और कविताओं के अंश देखिए-

लो, अब लगा बरसने पानी।
ये बादल हैं कितने दानी।

अम्मा, अगर न बादल आते,
और न ये पानी बरसाते।
फिर कैसे खेती की जाती?
फिर सारी दुनिया क्या खाती? (बादल)

आती रेल, दिखाती खेल।
सबसे रखे दोस्ती-मेल। (रेलगाड़ी)

सामूहिकता के भाव को दर्शाती ये पंक्तियाँ भी पढ़िए-

लगे झूलने बारी-बारी
करके गाने की तैयारी।
कभी-कभी था कोई गाता,
मीठी-मीठी तान उड़ाता।
झूला कभी पहुँचता अम्बर,
कभी चला आता धरती पर। (झूले का आनंद निराला)
इस संदर्भ में एक और अंश देखिए जो कविता 'इस बार चाँद पर जाकर' से है-

हम रामू-श्यामू, राधा-रजिया,
रोशन, जोजेफ औ' पीटर!
हम सभी दोस्तों की पल्टन.
अपनी पूरी तैयारी कर !

चंदा मामा के घर जाकर,
खेलेंगे, धूम मचाएँगे।
बात जब बस्ते की हो तो 'मेरा' बस्ता' कविता बच्चे का यह सुखद पक्ष सामने लाती है-

रंग-बिरंगा मेरा बस्ता
कितना सुंदर, लेकिन सस्ता

असल में जिस बच्चे का यह बस्ता है, वह 'राजा बेटा' कविता का-सा बच्चा है-

राजा बेटा निकला घर से,
राजा बेटा चले मदरसे।
देखो जाता हँसता-हँसता
लिये हाथ में अपना बस्ता।

मयंक जी कितनी ही अच्छी कविताओं में, बात बालक की ओर से कही गई है। अर्थात लेखक के अपनी ओर से न कही जाकर बालक की ओर से कहने के शिल्प में। इससे कविताओं में अपने पाठक के द्वारा उन्हें अपनाने या अपना समझने का जरूरी भाव अधिक जागता है।आज ऐसी ही कविताओं का समय है जो बच्चे के स्वयं की ओर से अधिक हो। बालक खुद सुनाए, वह मात्र अन्य की सुनने वाला न हो। ऐसी ही कविताएँ बाल मनोविज्ञान के भी करीब होती हैं। उदाहरण के लिए कविता 'मैंने बहुत मिठाई खाई' को पढ़ा जा सकता है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ –

"मैंने रो-रो रात बिताई।
दैया! दैया! खूब मचाई।
'खाऊँगा अब नहीं मिठाई। '
पकडे कान, कसम यह खाई।"

कवि की बाल मनोविज्ञान के समझ की क्षमता की बात की जाए तो वह 'हवा से' जैसी कितनी ही कविताओं से स्पष्ट है। 'हवा से' एक बेहतरीन कविता है ही जिसमें बच्चे को अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार भी दिया गया है, और इसलिए यह कविता आज की भी कविता है। देखिए हवा से संवाद करते हुए बच्चा की यह मार्मिक व्यथा-

दद्दा के पिटने के डर से,
हाय! न मैं बाहर जा पाता।
पर तुम तो स्वछंद सदा की,
जहाँ चाहती, जाती हो तुम।
हवा, कहाँ से आती हो तुम?

हवा, अरे कितनी अच्छी हो,
पढ़ने का न तुम्हें झंझट है।
बस केवल घूमा करती हो,
जी-भर मौज उड़ाती हो तुम।
हवा, कहाँ से आती हो तुम?

कविता 'पानी-पानी-पानी' की ये पंक्तियाँ भी पढ़ ली जाएँ,जिन्हें कवि ने मानों एकदम बच्चा बन कर ही लिखा हो-

पापा जी हैं घर के बाहर नहीं निकलने देते,
चबूतरे के नीचे हैं वे नहीं उतरने देते।
लगातार की इस वर्षा से तबियत है घबराई,
कई दिनों से सूरज ने भी सूरत नहीं दिखाई। (चिड़िया चली चाँद के देश)

एक और खास कविता है -अच्छा लड़का' जिसमें माँ अपने बच्चे को अपनी बात कहने का अधिकार सहर्ष देती प्रतीत होती है और दोस्ताना संवाद शैली में उसे सही राह पर आने की समझ भी देती है। यह कविता थोड़ी लंबी है। इसका प्रारंभिक अंश यूँ है-
"अम्मा, हो गया सवेरा है,
अब जल्दी चाय बनाओ तुम।
बिस्तर पर चाय पीयूँगा मैं,
जाओ, झटपट ले आओ तुम।"

कविता का अंतिम भाग यूँ है-
"अच्छा अम्माँ," मोहन बोला,
मैं बात तुम्हारी मानूँगा।
बिस्तर पर से उठते ही मैं
अब चाय न तुमसे माँगूँगा। (रचनावली, खंड 1)

और 'नानी का घर' कविता की इन नटखट पंक्तियों को पढ़ कर भला कौन हँसी रोक पाएगा -

कितना प्यारा नानी का घर
हमको रहती मौज वहाँ पर।

मम्मी नहीं डॉटने पाती
हम सबकी चाँदी हो जाती।
सोच की सहजता को, मयंक जी, अपनी कविताओं में बहुत ही सहज भाव से पिरो देने में महिर दिखते हैं। 'जाड़े की रात' की ये पंक्तियाँ पढ़िए-

हे भगवान! बड़ा दु:ख देता,आकर सब को जाड़ा।
जाने इसका हम लोगों ने, है क्या काम बिगाड़ा?

'मयंक' जी में, सोच की सहजता के साथ, बाल सुलभ जिज्ञासा, प्रश्नाकुलता आदि को भी कविताओं में बेहतरीन ढंग से पिरोने का सामर्थ्य बखूबी है। 'कौन', 'सुनहले काम' आदि कविताओं को इस दृष्टि से भी पढ़ा जा सकता है।

'मयंक' जी की निगाह बहुत विशद है। वह त्योहारों, ऋतुओं, प्रकृति के नाना रूपों, पशु-पक्षियों की दुनिया, कुछ स्थानों, चाट-गरम, कुलफी, गोलगप्पे, तरबूज, झूला, जादूगर, लंगड़-पेंच आदि पारम्परिक भारतीय खेल, चलन और वस्तुओं की ओर तो जाती ही है, खास कर देश से जुड़ाव की भावनाओं की ओर भी गयी है। वर्ग की दृष्टि से इनके यहाँ निम्न और मध्यवर्ग प्राय: दिखता है।कस्बाई और ग्रामीण झलक भी दिखती रहती है। कविताओं में कथारस देने का भी प्रयास इनके यहाँ मिल जाता है। 'परियों का नाच', 'चूहों की बारात' आदि ऐसी ही कविताएँ है।

मुझे लगता है कि मौसम पर बाल कविताएँ लिखने में 'मयंक' जी का मन बहुत रमा है। इसीलिए उन्होंने बहुत बार शीर्षक भी बहुत मजेदार और सहज ही आकर्षक रच लिए हैं, जैसे 'वर्षा लौटगी घर अपने', 'दिन हैं खतरे वाले', 'जादूगर बरसात', 'जाड़ा बड़ी जोर का भाई', 'मौसम के बच्चे' आदि। 'मौसम मे बच्चे' कविता में जाड़ा, गरमी और वर्षा का जो सहज मानवीकरण हुआ है वह निश्चित रूप से हिंदी बालसाहित्य को उनकी विशेष देन है। यह कविता पहले पहल पराग, दिसम्बर, 1967 में प्रकशित हुई थी।

अनारोपित मानवीकरण के ये रचावदार अद्भुत पंक्तियाँ भी पढ़ ली जाएँ जो 'फूल हँसे' से हैं-

फूल हँसे, कलियाँ मुस्काई,
पक्षी गाते मधुर बधाई।
बगिया के पेड़ों ने पहने
आज नये पत्तों के गहने।

'मयंक' जी को अद्भुत चितेरा भी कहा जा सकता है। वे शब्द-चित्र के जादूगर प्रतीत होते हैं। सबकुछ को जैसे साक्षात कर देते हैं। मजेदार स्वाद तक को साक्षात कर देते हैं। 'तरबूज' कविता को ही पढ़ कर देख लिया जाए। एक अंश है-

बस बर्फ में डाल के
नमक दीजिए डाल
फिर खा के आप देखिए
तरबूज़ का कमाल!

है क्या मजाल! एक
फाँक खा के जो रुके
औ' दूसरी लेने के लिए
आप न झुके!

एक और बड़ी विशेषता है इनके द्वारा लोक से उठायी शब्दावली और शैली का जीवंत प्रयोग। मुहावरों का भी। कुछ शब्द देखिए- भड़-भड़, घोमनघोट, चिटपटिया, चटपट-चटपट, अगड़म-बगड़म, तड़ातड़, धुरड़-घुरड़ आदि। भाषा और शैली की प्रयोगगत स्थानिकता बालसाहित्य को समृद्ध भी किया करती है और उसे अपना एक ताजा निजी वैशिष्ट्य भी प्रदान किया करती है। इस बात को कूप मंडूक बने, या केवल कोशों में अटके आलोचकों को समझना चाहिए। यहाँ मैं, अपने लेखों में बार-बार कहे अपने मत को फिर दोहराना चाहूँगा कि रचनात्मक साहित्य मात्र विषय नहीं होता बल्कि विषय के अनुभव की कलात्मक अभिव्यक्ति होता है। और इसीलिए मौलिक होता है। स्थानिकता का जरा यह मजेदार प्रयोग देखिए-

थोड़े दिन की बात और है,
जमकर खूब पढ़ेंगे हम।
इम्तहान में ताल ठोंककर
कुश्ती खूब लड़ेंगे हम। (पढ़ना है जी पढ़ना है)

अंत की ओर आते हुए यह भी लिखना चाहूँगा कि चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' जी लय के भी बड़े साधक रहे हैं। कभी-कभार जब वे लयगत प्रयोग करने पर आए हैं तो रचना कुछ अलग ही चमकने लगी है। एक फुदकती सी कविता 'जागे स्कूल' याद हो आई है। आंशिक आनंद लीजिए-

गर्मी की छुट्टी
में सोये स्कूल!
चारों तरफ जैसे
बिखरी थी धूल!

आई जुलाई,
तो जागे स्कूल।
चम-चम चमकते
नहीं कहीं धूल।

इस लेख का अंत, मैं रचनाकार चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' जी के बाल भारती के जून, 1985 अंक में प्रकाशित इन शब्दों को रेखांकित करते हुए करना चाहूँगा जिनका स्रोत 'चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' रचनावली खंड - 3 है-

"सम्पादकों की ओर से रचना को वापस कर दिये जाने पर मैं कभी निराश नहीं हुआ। नये-नये विषयों को ढूँढ़कर नये प्रकार से अपनी बात करने का सदैव प्रयास किया। मेरा विश्वास है कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में उन्नति करने के लिए दृढ़ निश्चय, निष्ठा तथा सच्ची लगन की आवश्यकता होती है। "

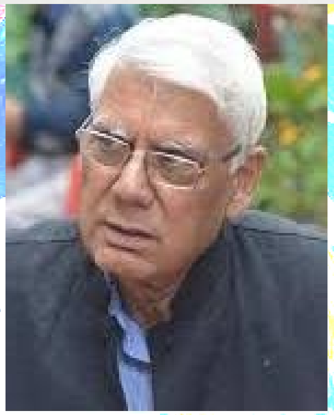

दिविक रमेश का जन्म वर्ष 1946 में दिल्ली के किराड़ी गाँव में हुआ। उनका मूल नाम रमेश शर्मा है। 11वीं कक्षा से ही शिक्षा के साथ-साथ आजीविका के लिए संघर्षरत रहे। दिल्ली विश्वविद्यालय से पीएचडी के साथ प्राध्यापन के पेशे से संबद्ध हुए और मोती लाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली के प्राचार्य पद तक पहुँचे। उन्होंने दक्षिण कोरिया में अतिथि आचार्य के रूप में भी कार्य किया। इससे पूर्व लगभग दो दशक दूरदर्शन से जुड़े रहे जहाँ विविध कार्यक्रमों के संचालन में योगदान किया। उन्होंने कविता, काव्य-नाटक, आलोचना एवं बाल-साहित्य जैसी विभिन्न विधाओं में लेखन किया है। 'रास्ते के बीच', 'खुली आँखों में आकाश', 'हल्दी-चावल और अन्य कविताएँ', 'गेहूँ घर आया है', 'वह भी आदमी तो होता है', 'छोटा-सा हस्तक्षेप' उनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं। 'खंड-खंड अग्नि' उनका काव्य-नाटक है। उनका आलोचनात्मक योगदान 'नए कवियों के काव्य-शिल्प सिद्धांत', 'कविता के बीच से', 'साक्षात त्रिलोचन', 'संवाद भी विवाद भी', 'निषेध के बाद', 'हिंदी कहानी का समकालीन परिवेश', 'कथा-पड़ाव' के रूप में प्रकाशित है। 'फूल भी और फल भी' लेखकों से बारे में उनके आत्मीय संस्मरण की क़िताब है। बाल-साहित्य श्रेणी में कविताओं और कहानियों की उनकी दर्जनाधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं। उन्होंने कोरियाई कवयित्री किम यांग शिक एवं अन्य की कविताओं के हिंदी अनुवाद किए हैं।

उनकी कविताओं के अँग्रेज़ी, कोरियाई और मराठी अनुवाद पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुए हैं। वह 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित हैं।